

प्राचीन भारतीय आर्थिक विचार

प्राचीन भारतीय आर्थिक विचारों का इतिहास प्रगैतिहासिक काल तथा सिन्धु सभ्यता की नगर योजना खान-पान, रहन-सहन तथा व्यवसायिक रीति-रिवाजों से प्रारंभ होता है। यहीं से प्राचीन भारतीय आर्थिक विचारों का उद्भव काल माना जाता है। आर्थिक विचार देश, काल एवं परिस्थितियों के अनुकूल बदलते तथा विकसित होते रहते हैं।

कुछ पाश्चात्य अर्थशास्त्रियों का मानना है कि अर्थशास्त्र का जन्म एडम स्मिथ की "वेल्थ ऑफ नेशन्स" नामक पुस्तक से माना जाना चाहिए। परन्तु भारतीय विद्वान इससे सहमत नहीं हैं। अर्थशास्त्र के उद्भव में वैज्ञानिकता का आविर्भाव का वहना मात्र से आर्थिक गतिविधियों को मानव जाति के ऐतिहासिक विकास क्रम से अलग नहीं किया जा सकता। वेद, उपनिषद्, महाकाव्य, स्मृति तथा पुराणों में निहित सामग्री ही आर्थिक विचारों के इतिहास के मूल स्रोत हैं। वर्तमान, अतीत क्षमिति पर ही खड़ा है। प्राचीन अर्थशास्त्रीय ग्रंथों और आर्थिक विचार की परंपरा में अनेक ऐसे विचार मिलते हैं जो आधुनिक युग में भी परिवर्तित या संशोधित रूप में मौजूद हैं।

1500 BC - 1000 BC
1000 BC - 600 BC
वैदिक युगीन आर्थिक विचार — ऋग्वेद के मंत्रों से पता चलता है कि उस समय के लोगों में अर्थ व धन की एक ओर कामना की जाती थी, वहीं दूसरी ओर उसे इतना अधिक महत्व नहीं दिया जाता था। लोग धन की वृद्धि उतनी ही चाहते थे, जिससे उनकी आवश्यकता की पूर्ति हो सके। "किसी दूसरे व्यक्ति के धन का अपहरण करना पाप है" इससे स्पष्ट होता है कि धन की लिप्तासम्पत्ति होनी चाहिए। परिश्रम द्वारा अर्जित धन से ही संतोष काना मानव का कर्तव्य माना गया। हालाँकि धन के अपहरण करने की भावना का उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है। ऋग्वेद में इसका भी उल्लेख है कि प्रतिशोषिता एवं प्रतिस्पर्धी धन रखने वाले व्यक्तियों के बीच होते रहती थी अर्थात् प्रत्येक अपने से अधिक धन वाले मनुष्य को देखकर उसकी समानता प्राप्त करने की अभिलाषा करता है। एक गुणा धन रखने वाला अपने से दोगुने धन रखने वाले के मार्ग में अवरोध उत्पन्न करता है। यह क्रम दोगुना और तीगुना के बीच फिर तीगुना धनवान अपने से दोगुना धन वाले के पीछे छोड़ता है। ~~दरबन्दा~~ को मिलता है।

वैदिक समाज में प्रत्येक व्यक्ति एश्वर्य वृद्धि चाहता था। ऋग्वेद के विभिन्न मंडलों में विष्णु, इन्द्र तथा वरुण के मंत्रों द्वारा की गई याचना से स्पष्ट होता है कि वे विभिन्न प्रकार के धनों के लिए आद्वान व प्रार्थना करते थे कि हे इन्द्र तुम्हारे पास अनन्त धन है, उसे बाँट डालो, मैं भी तुम्हारे धन में भाग प्राप्त करूँ। इससे स्पष्ट होता है कि धन का समान वितरण समाज में बना रहे। किसी प्रकार का सामाजिक असमानता उत्पन्न न हो इसके लिए वैदिक काल में पयत्न जारी रहे। ऋग्वेद में ऋण लेने या देने दोनों को पाप कहा गया है। जिसके पास धन होता है वह ऋण से मुक्त रहता है। सामाजिक कल्याण हेतु अनेक वैदिक मंत्रों में शत्रुओं से रक्षा करने तथा धन को बढ़ाने की प्रार्थनाएँ भी मिलती हैं।

उत्तर वैदिक कालीन आर्थिक विचार - उत्तर वैदिक

काल में लोगों के आर्थिक जीवन में काफी परिवर्तन दृष्टिगोचर हुए। ऋग्वेदिक कालीन ग्रामीण सम्यता वहीं उत्तर वैदिक काल में नगर सम्यता के रूप में बदल गई। इस युग के लोग श्रम को अधिक महत्व देते थे। लौह धातु का प्रचलन पूर्ववैदिक युग में नहीं था किन्तु यजुर्वेद में हमें उसका संकेत मिलता है। लौह को यजुर्वेद में "अयाम" के नाम से पुकारा जाता था। ताँबा, सोना आदि धातुओं से आभूषण तैयार करने आदि की प्रक्रियाओं का भी उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद के दसवें मण्डल में राजा को लोगों से कर लेने वाला कहा गया है किन्तु अथर्ववेद में उसे करारोपण का भी अधिकारी माना गया है। दूसरों की सम्पत्ति को लोग चरोहर के रूप में भी धारण किया करते थे। इससे सिद्ध होता है बेंकिंग प्रणाली की रूपरेखा का सूत्रपात यहीं से प्रारंभ हो गया था। अथर्ववेद में उल्लिखित "विपय" शब्द के प्रयोग से स्पष्ट होता है कि लोगों ने अपने सामाजिक और व्यापारिक उन्नति के लिए सड़कों का निर्माण किया था। काठकसंहिता में उत्तर वैदिक काल में २५ बैलें द्वारा हल खींचे जाने का उल्लेख मिलता है। अथर्ववेद एवं शतपथब्राह्मण में उत्पादन के लिए खाद के प्रयोग का भी उल्लेख मिलता है।

उपनिषद्कालीन आर्थिक विचार - ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र की

इस प्रकार से अपनी आजीविका चलानी चाहिए। इसका विवेक उपनिषदों में मिलता है। इस काल में कर्म को प्रत्येक क्रिया को सम्पन्न करने का साधन माना गया। उपनिषद्काल में कृषि ही लोगों का प्रमुख उद्योग था। प्रश्नोपनिषद् में कहा गया है कि "जब तू जलवृष्टि काता है, तब तेरी यह प्रजा अन्न उत्पन्न होने की आशा में आनन्दित हो जाती है।" उपनिषद्कारों का कहना है कि अन्नोत्पादन से ही प्राणियों का कल्याण सम्भव है। अत्यधिक अन्न का भण्डार रखने वाला श्रेष्ठ कहा गया है। उपनिषद् काल में जहाँ एक ओर कृषि के समृद्धिशीली दशा में होने के विवरण प्राप्त होते हैं वहीं दूसरी ओर अतिवृष्टि से फसलों के खराब होने का भी विवेचन मिलता है। इस काल में भी लोग धातुज्ञान से परिचित थे। हालाँकि अध्यात्म के प्रति उन्मुखता के कारण इस विषय पर अधिक संकेत नहीं प्राप्त है। षण्णहोत्र्युपनिषद् में एक स्थान पर कहा गया है कि - जब अण्डा फूटा तो उसके दो टुकड़े, चाँदी रूप और स्वर्ण रूप हुए। चाँदी रूप भग पृथ्वी है और स्वर्ण रूप भग स्वर्ग है। अध्यात्मिकता की प्राप्ति की ओर अग्रसर रहने की वजह से आर्थिक विचारों की आर्थिक प्रगति ज्यादा सम्भव न हो सकी।

महाकाव्य कालीन आर्थिक विचार -

इस युग के आर्थिक विचारों का समाज में महान योगदान था। रामायण महाकाव्य - काल का प्रथम ग्रंथ है। इसके अनुशीलन से तत्कालीन अर्थतंत्र प्रौढ़ और विरसित वार्ताशास्त्र का पता चलता है। वार्ता का सम्बन्ध कृषि, पशुपालन, व्यापार वाणिज्य से है और रामायण में वार्ता की अर्थशास्त्र का एक प्रमुख अंग पाया गया है। राम का भरत को सम्पूर्ण प्रजा की कृषि तथा अन्य व्यवसायों में संलग्न करने का आदेश इसके महत्व को सत्य सिद्ध करता है।

सिन्धु घाटी सभ्यता के समाज, अर्थ व्यवस्था, धर्म एवं राजनीति

~~समाज~~ ^{समाज} ~~विश्व~~ ^{विश्व} की अन्य प्राचीन सभ्यताओं की ही तरह सिन्धु सभ्यता का समाज भी वर्गों के ^{पर आधारित था।} विभेद पर आधारित था। संस्कृति से सम्बन्धित स्थलों के खुदाइयों के आधार पर हम तत्कालीन समाजिक जीवन की रूपरेखा प्रस्तुत कर सकते हैं। भवनों के आकार-प्रकार एवं आर्थिक विषमता के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सिन्धु सभ्यता का समाज भी वर्ग विभेद पर आधारित था। उत्खनन में जहाँ कुछ धनिकों के मकान मिले हैं वहीं गरीबों के भी। दुर्ग के साथ ही मजदूरों की झोपड़ियाँ (बैरफ) भी मिली हैं। उत्खनन में प्राप्त अवशेष इस सभ्यता के निवासियों के रहन-सहन के विषय पर उपयुक्त प्रकाश डालते हैं।

~~समाज~~ ^{समाज} परिवार समाज की इकाई थी। स्त्री मूर्तियाँ अधिक मिलने से ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि सैन्धव समाज मातृसत्तात्मक था। समाज के अन्तर्गत कई वर्ग थे - पुजारी, पदाधिकारी, ज्योतिषी, जादूगर, वैद्य ये लोग उच्चवर्गीय समझे जाते थे। ~~सर्व~~ कृषि-व्यवसायी, कुम्भकार, बढ़ई, मल्लाह आदि लोग निम्नवर्गीय समझे जाते थे। यद्यपि वर्ग विभाजन था फिर भी सामग्री की प्रचुरता के कारण भोजन का आभाव लोगों को नहीं होता था। यद्यपि वे युद्ध प्रेमी नहीं थे और शांतिपूर्ण ढंग से अपना जीवन यापन करते थे। सार्वजनिक रूप से सुख समृद्धि की प्रति उनकी संगठित समाजिक व्यवस्था का लक्ष्य था।

सिन्धु घाटी से प्राप्त अवशेषों में मिट्टी एवं प्यातुओं के बने हुए बरतन, टोकरी, चटाई, पलंग, चारपाई, दीप, बस्तुओं के अनुरूप वस्त्र, नुकीली टोपी ~~के~~ मिले हैं जिससे पता चलता है कि इसका वे समुचित व्यवस्था करते थे। केश विन्यास में सिन्धु घाटी सभ्यता अद्वितीय थी। दर्पण एवं कंकियाँ खुदाई में मिली हैं। पुरुष दाढ़ी-मूँछ रखते थे तथा अस्तुरे के प्रयोग से अवगत थे। महिलायें केश सज्जा तरह-तरी करती तथा श्रृंगाल के लिए काजल, पाउडर, सिन्दूर, लिप्स्टिक, रजस्रं आभूषण का प्रयोग करती थीं।

कपड़े के व्यवहार में ये लोग बड़े ही प्रवीण थे। शाल, ~~लकड़ी~~ ^{लकड़ी} हुए कपड़े पहनते थे। सुइयों का

भी यहाँ प्रयोग होता था। निम्न वर्ग के लोग चोंचों के आभूषण पहनते थे। प्यनी लोग सोने, होंची दाँत तथा अन्य बहुमूल्य पत्थरों के आभूषण पहनते थे। इससे उनके सामाजिक जीवन में कला प्रेम पर प्रकाश पड़ता है।

सिन्धुवादी में बहुत सारे शिवलिंग भी मिले हैं। मिट्टी के मुनमुने बच्चों के बीच प्रचलित थे। मछली पकड़ना और शिकार करना उनका प्रिय कार्य था। धनुष उन लोगों के शिकार खेलने का प्रमुख साधन था। बाला, तलवार, कटार का व्यवहार भी करते थे। पशुपक्षियों की लड़ाकू उनके आनंद प्रमोद का एक अंग था। सिन्धुवादी चौपट, पासा, शतरंज खेलते थे।

प्राचीन काल में सिन्धुप्रान्त की भूमि उपजाऊ थी वर्षा अच्छा होने के कारण गेहूँ, जौ, राई, मटर की उगाई होती थी। आनाज कुटने व पीसने की कला से अवगत थे। मांस मछली भोजन के मुख्य पदार्थ होते थे। दही, मक्खन, मट्ठा, घी आदि भी ये लोग बनाता जानते थे। शिलाजित, हरिण सिंघा के चूर्ण एवं समुद्रफेन का व्यवहार औषधि के रूप में होता था।

व्यापारिक सम्पत्ति का विकास होने से नगरों की स्मृति हुई थी। मकानों के आध्या पर यह कहा जा सकता है कि समाज दो वर्गों में विभक्त था - व्यापारी और शिल्पी या मजदूर। राजा या अधिपति नहीं इसका स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता। समाज में मध्यम वर्ग, कुली-मजदूर, कारीगर आदि के होने का भी प्रमाण मिलता है।

अर्थिक जीवन - खेतों की उर्वरता एवं उपयुक्त वर्षा के कारण वहाँ आनाज की कमी नहीं थी। कपास उत्पादन के कारण वहाँ के लोग अपने लिए कपड़े बनाते थे। आनाज दोने के लिए दो से चार पाहचेवाली लकड़ी गाड़ीयों का इतने मांस काते थे। पशुपालन एक अवसाय का रूप ले चुका था। हाथी, सूअर, ऊँट, गधे पालतू पशु थे। इससे सिद्ध होता है कि सिन्धुप्रदेश में पशुपालन की अच्छी व्यवस्था थी।

सिन्धुप्रदेश में कपास की खेती होने के कारण एवं कटाई बुनाई का अच्छा प्रबन्ध होने के कारण यहाँ से सूती कपड़ा मेसोपोटामियाँ भेजा जाता था। सूती के साथ साथ ऊनी एवं रेशमी कपड़ों का भी वे इस्तेमाल करते थे अर्थात् वस्त्रोत्पादन और वस्त्रोपयोग की दृष्टि से भी सिन्धु घाटी के लोग सम्पन्न थे।

कुम्भकारों और स्वर्णकारों का व्यवसाय भी उन्नत अवस्था में था। इसके अतिरिक्त हाथ से भी सामग्री बनती थी। धातु को जलाने एवं अभ्रषणों को बनाने में स्वर्णकार निपुण थे। ठीक उही प्रकार कुम्भकार भी अता। उन लोगों का जीवन काफी व्यस्त था और व्यापार भी कलाति पर था। लीन और ताँबा गिलाकर कौंसा तैयार किया जाता था। शीशे के व्यवहार से भी वे परिचित थे। नाव बनाने की कला में वे लोग प्रवीण थे। सम्भवतः राजपुताना और बलुचिस्तान से ताँबा, अफगानिस्तान और कास से लीन, सोना और चाँदी तथा दक्षिणी भारत से बहुमूल्य पत्थर मंगाये जाते थे। सुमेर की कई चीजें हरप्पा और मोहनजोदड़ो से मिली हैं। इसका और सूसा से इस क्षेत्र का प्निष्ठ सम्पर्क था। इससे सिद्ध होता है कि वाह्य देशों के साथ सिन्धु घाटी का व्यापारिक सम्बन्ध था तथा अन्तर्देशीय व्यापार भी होता था।

धर्म — सिन्धु घाटी के निवासियों के धार्मिक विश्वास के पुरा स्वरूपकालिखत साहित्य अथवा स्मारक उपलब्ध नहीं होते। ^{के पीछे भी} केवल उपलब्ध पुरातात्विक स्मृतियों के आधार पर ही कुछ कहा जा सकता है। हड़प्पा संस्कृति में कहीं से किसी भी मंदिर के अवशेष नहीं मिले हैं। मोहनजोदड़ो एवं हड़प्पा से भारी मात्रा में मिली मिट्टी की मूर्तियों में से एक स्त्री मूर्ति के गर्भ से एक पेंचा निकलता हुआ दिखाया गया है। इससे यह मान्य होता है कि हड़प्पा सभ्यता के लोग प्यरती की उर्वरता की देवी मानकर इसकी पूजा किया करते थे। मोहनजोदड़ो से प्राप्त एक सील पर

तीन मुख वाला एक पुरुष व्याग की मुद्रा में बैठा हुआ है। उसके सिर पर तीन लींग हैं। उसके बायीं ओर एक गेंडा और एक गेंडा है तथा दायीं ओर एक लोथी एक व्याघ्र और एक हिरण है। इस चित्र से ऐसा प्रतीत होता है आज के भगवान शिव की पूजा उस समय 'पशुपति' के रूप में होती रही होगी।

हड़प्पा एवं मोहनजोदड़ो से मिले पत्थर के नवने लिंग एवं योनि से उगमी पूजा के प्रचलन में होने का भी प्रमाण मिलता है। वृक्ष पूजा के प्रमाण मोहनजोदड़ो से प्राप्त एक सील पर बने पीपल के अण्डों के मध्य देवता से मिलता है। पशुओं में कुक्कुट वाला सांड इस सभ्यता के लोगों के लिए विशेष पूजनीय था। अथीक माग में मिली ताबीजों से ऐसा लगता है कि सिन्धु सभ्यता के लोग भूत-प्रेत एवं तंत्र मंत्र में भी विश्वास करते थे।

राजनैतिक स्थिति — हड़प्पा संस्कृति की व्यापकता एवं विकास को देखने से ऐसा लगता है कि यह सभ्यता किसी केन्द्रित शक्ति से संचालित होती थी। वैसे यह प्रश्न अभी भी विवाद का विषय बना हुआ है। फिर भी चूंकि हड़प्पा वासी वाणिज्य की ओर अधिक आकर्षित थे इसलिए ऐसा माना जाता है कि सभ्यता हड़प्पा सभ्यता का शासन वणिज्य वर्ग के हाथ में ही था। हवेलर ने सिन्धु प्रदेश के लोगों के शासन को 'मध्यम वर्गीय जनतन्त्रात्मक शासन' कहा और उसमें धर्म की महत्ता को स्वीकार किया। ह्यूअर्ट पिगोटे महोदय ने कहा कि 'सिन्धु प्रदेश के शासन पर पुरोहित वर्ग का प्रभाव था। हेंटर के अनुसार 'मोहनजोदड़ो का शासन राजतन्त्रात्मक न होकर जनतन्त्रात्मक था। जबकि मैके महोदय के अनुसार 'मोहनजोदड़ो का शासन एक प्रतिनिधि शासन के हाथों में था। फिर भी नगर योजना को देखकर यह कहा जा सकता है कि वहाँ नगरपालिका की अचिष्ट व्यवस्था थी और नगरों में सुरक्षा के लिए पुलिस की व्यवस्था थी। निष्कर्षतः, सिन्धुवादी ने शांतिमय जीवन के प्रमाणों को यह सिद्ध करने के लिए कहा जा सकता है कि शासन व्यवस्था अचिष्ट थी और विप्लव तथा अभ्युदय से यह प्रदेश बहुत दिनों तक मुक्त था।

भूमि अनुदान - पूर्व मध्यकाल की एक व्यवस्था

DATE: / /

प्रारंभिक ^{मध्यकाल} एवं पूर्व मध्य काल के इतिहास में, भारत में भूमि अनुदान की परम्परा एक नये बदलाव एवं व्यवस्था की ओर आवृत्त होते दिखाई देती है। प्रारंभिक मध्यकाल के साहित्य और अभिलेख भू-अनुदान के महत्ता के लंबे-चौड़े यशगान से भरे-पड़े हैं। इतिहासकार अध्ययन की सुविधा के लिए इस कालखण्ड को दो भागों में बाँटते हैं (1) अर्थव्यवस्था का ह्रास का काल और (2) भारतीय अर्थव्यवस्था का पुनरुत्थान का काल।

प्रारंभिक मध्यकाल के साहित्य और अभिलेखों में कहा गया है कि दानदाता अपने तथा अपने पितरों के नैसर्गिक कल्याण के लिए ब्राह्मणों को भूदान और देवालयों का निर्माण कराया था। निःस्वार्थी और इानी ब्राह्मणों को शिक्षा, ज्ञान और धर्म के प्रचार के लिए भू-अनुदान दिया जाता था। इससे प्राचीन काल के ब्राह्मण जो अपने को यज्ञ, पूजापाठ और शिक्षा दान को दक्षिणा पर आधारित रखते थे, भू अनुदान से भूस्वामी बने लगे। देवालय और मठों के पास बड़ी-बड़ी सम्पदाएँ होने लगीं। अतः समाज में एक नया भूस्वामी वर्ग उत्पन्न लिगा। इसी नये भूस्वामी वर्ग के लिए भूदान की विचारधारा गढ़ी गई और उसे सही प्रकार ^{आर्थिक} के ^{आर्थिक} देय से भी मुक्त रखा गया।

राजा लोग अपने राज्य के प्रसार और उसे बरकरार रखने के लिए बड़ा-बड़ा युद्ध लड़ता था और हजारों लोगों का बध कर उसके बिलखते परिवार को अपनी सत्ता के झूए के नीचे रक्की लाता था। इस अपराध बोध से मुक्ति का दर्शन भूअनुदान, स्वर्णदान, अभि-वस्त्रदान की परंपरा को ब्राह्मणों ने जन्म दिया था। इस तरह ब्राह्मण और देवता (यानी पुरोहित) को दान से पाप से मुक्ति की विचार-धारा प्रारंभिक मध्ययुग में सर्वमान्य बना दिया गया। फलतः धनवानों के बीच से पाप का भय दान के द्वारा समाप्त कर ब्राह्मण और देवालय मालामाल होने लगा। पाप का भय सिर्फ गरीबों में रह गया। भूदान

को सबसे बड़ा दान दशार्जुन के लिए चर्मराथों में कहा गया था कि "भूदानकर्ता 16 हजार वर्ष तक स्वर्गवास करेगा"। पुराणों और महाकाव्यों में स्वर्ग का लोभ और नरक का भय दिखलाया गया, ताकि चनहीन भी स्वयं भूदान नंगा रहकर दान करे।

इस प्रकार प्रारंभिक मध्यकाल में तीन प्रकार के भू-अनुदान पाये जाते थे। (A) अग्रहार (B) ब्रह्मदेय और (C) देवदान या परिहार।

प्रथम प्रकार का भू-अनुदान राज्य के सैनिकों को वेतन के बदले दिया जाता था। बिहार, बंगाल, मध्यभारत, राजस्थान एवं गुजरात आदि से प्राप्त भू-अनुदान पत्रों से ज्ञात हुआ है कि अग्रहार गुप्तकाल से शुरू होकर प्रारंभिक मध्यकाल में विष्णु के उतर के राज्यों में काफी प्रचलित हो गया था और राज्य के मंत्रियों से लेकर सैनिक सेवा करने वाले तथा अन्य कर्मचारियों को राज्यकर मुक्त भूमि दिया जाता था। ऐसा भू-अनुदान राजपरिवार और उसके रिश्तेदारों को भी दिया जाने लगा था। फलतः राजकर्मचारी, राजपरिवार के लोग, छोटे-बड़े सामन्त आदि बड़े-बड़े भूस्वामी होने लगे और दानग्राही के जमीन पर बसने वाला लोग तथा किसान उसका रैयत था भूदास होने लगा।

द्वितीय प्रकार का भू-अनुदान ब्रह्मदेय भूमि ब्राह्मणों को दिया जाता था। पहले यह भू-अनुदान वैदपाठी ब्राह्मणों को उन ग्रंथों के पाठ को स्मरण रखने तथा उसका वाचन सुनाने के लिए दिया जाता था (हर्ष का बौद्धखैरा ताम्रपत्र अभिलेख)। किन्तु प्रारंभिक मध्यकाल में कर्मकाण्डी पुरोहितों को भी ब्रह्मदेय भूमि दिया जाने लगा था। यह दान कुछ बीघे जमीन तक सीमित होता था। किन्तु यह राजस्व करमुक्त (12 वर्ष की छूट) सहित या करद्वे दोनों हुआ करता था। कर सहित भू-अनुदान प्रायः मैदानी भाग में प्रचलित था। दियरा क्षेत्र (झोली) में नर्मदा नदी के सीमरने से नये-नये जमीन उपलब्ध हो रहे थे। अतः ~~ये~~

अकबर की धार्मिक नीति

Religious Policy of Akbar

जहाँ मुगल शासकों ने मध्यकालीन भारत के

इतिहास और सांस्कृतिक जीवन को विभिन्न रूप में प्रभावित किया, वहाँ उन्होंने अपनी और-मूलिम प्रजा के प्रति एक सुनिश्चित और नई नीति अपनाई, जिससे की साम्राज्य की बहुसंख्यक हिन्दू प्रजा को सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त हो सका और धर्म के आधार पर भेदभाव का बहुत अंशों में अन्त सम्भव हुआ। इस नई नीति का श्रेय अकबर को जाता है जिसने सुलह-ए-कुल अथवा सबके प्रति सद्भाव की नीति अपनाई और समस्त प्रजा को एक समान समका

अकबर की धार्मिक नीति राजनैतिक

उद्देश्यों से भी प्रेरित थी। मुगलों और अफगानों का संघर्ष पूरी तरह से समाप्त नहीं हुआ था और मुगल साम्राज्य को सुदृढ़ता प्रदान करने के लिए हिन्दू प्रजा का समर्थन प्राप्त करना आवश्यक था। अकबर के लिए यह काम और भी महत्वपूर्ण था क्योंकि इससे पहले शेरशाह ने धार्मिक उदारता की नीति अपनाई थी और इसे पूरी तरह त्यागना अनुचित होता। यह भी स्मरणीय है कि अकबर के विचारों पर सूफीवाद का गहरा प्रभाव था। शेरव खलीम चिश्ती से उसके गहरे सम्बन्ध थे और मुईनउद्दीन चिश्ती की दरगाह पर वह कई बार हाजरी के चुका था। यद्यपि सुन्नी मत में उसका पूर्ण विश्वास था फिर भी वह अन्य धर्मों और मतों को जानने में धर्मिरति रखता था। इस सबके अतिरिक्त उसका शासनकाल ऐसे समय में पड़ा जब इस्लामी (हिजरी) संवत् के एक हजार वर्ष पूरे हुये। मुसलमानों में ऐसा विश्वास था कि उस समय एक महदी उपस्थित होगा जो धर्म में सुधार लाएगा। अकबर ने इस विचार से भी लाभ उठाया और अपने आपको महदी अथवा धर्म सुधारक के रूप में प्रस्तुत किया।

हुआ। उसने आरम्भ में उल्लेख के प्रति उचित सम्मान दिखाया। लेकिन उसकी उनकी धार्मिकता से वह बहुत संतुष्ट नहीं था। 1563 ई० में राजपूतों के साथ मैत्रीपूर्ण नीति अपनाने के पश्चात् अकबर ने धार्मिक उदारता की दिशा में और महत्वपूर्ण कदम उठाये। 1563 ई० में ही उसने तीर्थ यात्रा कर समाप्त कर दिया। 1564 ई० में उसने जगिया कर समाप्त कर दिया और 1565 ई० में उसने युद्ध बन्धियों के बलपूर्वक धर्म परिवर्तन को वर्जित कर दिया।

इसीकाल में अकबर का सम्पर्क शेरव मुबारक और उसके दो बेटों अबुल फजल और पैजी के साथ हुआ। इनमें अबुल फजल का प्रभाव अकबर की धार्मिक नीति पर बहुत अधिक पड़ा। अबुलफजल ने अकबर के सामने राजत्व का एक नया सिद्धान्त प्रस्तुत किया। उसके अनुसार सम्राट को ईश्वर का प्रतिरूप माना गया। अबुलफजल का यह तर्क था कि जिस तरह ईश्वर द्वारा प्रदत्त लाभ और सुविधायें सभी मनुष्यों के लिए हैं और इनमें धर्म के आधार पर कोई भेदभाव नहीं, उसी प्रकार सम्राट के उत्तम शासन का लाभ सभी को प्राप्त होना चाहिए। इसके लिए सम्राट को समस्त प्रजा के प्रति शांति और सद्भाव अथवा सुलह-ए-कुल की नीति अपनानी चाहिए तभी वह न्यायप्रिय शासक माना जायेगा। अकबर ने इन्हीं विचारों को विशेषकर सुलह-ए-कुल को अपनी धार्मिक नीति का आधार बनाया।

1575 ई० में अकबर ने फतहपुर सिकरी में इबादतखाना भवन का निर्माण कराया। जिसमें विभिन्न धर्मों के उपदेशों और मूल सिद्धान्तों पर वाद-विवाद आरम्भ हुआ। इसमें मुसलमानों के विभिन्न सम्प्रदायों के अतिरिक्त हिन्दू, ईसाई, जैन, बौद्ध, सिक्ख और पारसी धर्म के आचार्यों को भी निर्मणित किया गया।